वीर संवत २४९२, माध शुक्ल ११, मंगलवार

दि.१-२-१९६६, गाथा ३, ४ प्रवचन नं.-१४

छहढाला चलती है। यह उसकी तीसरी ढाल है; उसकी तीसरी गाथा। तीसरी ढाल की तीसरी गाथा है। व्यवहार समकित अथवा व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप।

जीव अजीवतत्त्व अरु आस्रव, बन्ध रु संवर जानो;
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानो।
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो;
तिनको सुन सामान्य विशेषैं, दिढ़ प्रतीत उर आनो।।३।।

क्या कहते हैं ? दूसरी गाथा में कह गये हैं। '**परद्रव्यनतैं भिन्न आप - में रुचि समकित भला है;...**' पहले यह आत्मा शरीर, कर्म से और पुण्य-पाप आदि राग से पृथक् तत्त्व है - ऐसी अन्तर में सम्यग्दर्शन में अन्तर प्रतीति करना, उसका नाम निश्चय-सच्चा सम्यग्दर्शन है। वहाँ से धर्म का प्रारम्भ होता है। जिसे यह भान नहीं है, उसे किसी प्रकार का धर्म नहीं हो सकता। समझ में आया ?

परद्रव्य से भिन्न आत्मरुचि। यह शरीर, कर्म जड़ - यह सब मिट्टी - धूल अजीव (है)। कर्म भी अजीव है, उनसे आत्मा भिन्न है और अन्दर पुण्य-पाप शुभ-अशुभभाव होते हैं... दया, दान या काम-क्रोध के शुभाशुभभाव से भी आत्मा भिन्न है। यह ज्ञानानन्द शुद्ध आत्मा परमानन्द की मूर्ति आत्मा है। उसकी अन्तर में स्वभावसन्मुख की सम्यक्श्रद्धा की प्रतीति (हो), उसका नाम सच्चा समकित है। उसका नाम चौथे गुणस्थान की उत्पत्ति है। कुछ समझ में आया ? ऐसा सच्चा सम्यग्दर्शन अन्दर से उत्पन्न हो और उत्पन्न करे, उसके साथ व्यवहार समकित कैसा होता है ? - यह उसकी व्याख्या चलती है।

व्यवहार अर्थात् शुभभाव। निश्चय समकित अर्थात् शुद्ध परिणतिरूप श्रद्धा। आत्मा अखण्ड ज्ञानानन्दस्वरूप है। उसकी-शुद्ध चैतन्य की अन्तर्मुख की, राग बिना शुद्ध स्वभाव(का) अनुभव होकर प्रतीति-श्रद्धा (होना)। आत्मा आनन्दमूर्ति ज्ञायक हूँ - ऐसी अन्तर में - अनुभव में - भान में प्रतीति (होना), उसका नाम सच्चा सम्यग्दर्शन, उसका नाम सच्ची श्रद्धा, उसका नाम निश्चयसम्यग्दर्शन है। तब से धर्म की शुरुआत होती है। ऐसे सम्यग्दृष्टि धर्मी गृहस्थाश्रम में हो या मुनि, त्यागी हो; ऐसे सम्यग्दर्शन के बाद उसके साथ व्यवहार सम्यग्दर्शन का शुभराग, शुभ उपयोग उस प्रकार का व्यवहार ज्ञान का उपयोग (हो), उसे व्यवहार श्रद्धा... पुण्यबन्ध का कारण, उसे व्यवहार समकित कहते हैं। निश्चय समकित, वह संवर और निर्जरा का कारण है। समझ में आया ?

यह अब यहाँ नौ तत्त्व की बात करते हैं। जिसे आत्मा के अन्तर शुद्ध स्वभाव का भान होकर सम्यग्दर्शन, अन्दर अनुभव में प्रतीति होती है। यह आत्मा ज्ञान का कन्द है, पवित्र आनन्दकन्द है। जैसे परमात्मा हुए, वैसी दशा-समस्त शक्तियाँ मेरे आत्मा में पड़ी है - ऐसा आत्मा का अन्तर्मुख में स्वशुद्ध सन्मुख की अन्तर प्रतीति के साथे जो व्यवहार-नव तत्त्व की श्रद्धा का राग होता है, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं; परन्तु ऐसा निश्चयसम्यग्दर्शन होवे तो। कहो, भाई ! यह कहते हैं, देखो !

'**अन्वयार्थ - जिनेन्द्रदेव ने...**' पहला शब्द है। जिनेन्द्रदेव सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकर त्रिलोकनाथ भगवान को एक समय में, सैकेण्ड के असंख्य भाग में एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान था। उन भगवान ने नव तत्त्व देखे; छह द्रव्य के अन्तर भेद में नव तत्त्व देखे। यह नव तत्त्व जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित ऐसे। आत्मा निश्चय - सच्चे सम्यग्दर्शन की भूमिका में वीतराग द्वारा कथित ऐसे नव तत्त्वों की उसे श्रद्धा हो तो उस शुभभाव को व्यवहार समकिती कहा जाता है, (वह) पुण्यबन्ध का कारण है। निश्चयसम्यग्दर्शन, संवर-निर्जरा का कारण है।

उसमें जिनेन्द्रदेव ने '**जीव...**' कहा। भगवान ने जीव कहा। आगे उस जीव के तीन प्रकार करेंगे - बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। ऐसा बहिरात्मा का स्वरूप - जो पुण्य-

पाप और शरीर को आत्मा माने, ऐसे बहिरात्मा को, उसकी व्यवहार श्रद्धा में उस प्रकार मानना चाहिए। समझ में आया ? यह व्यवहार श्रद्धा, हाँ ! निश्चय श्रद्धा में आत्मा अखण्ड ज्ञायकमूर्ति (है)। उसकी अन्तर में - अनुभव में भान में प्रतीति (होना), स्वभाव की शुद्धता का श्रद्धा ज्ञान (होना), उस श्रद्धा का नाम संवर और निर्जरा है। उसके साथ जीव के प्रकार - बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा (पड़ते हैं)। यह भगवान द्वारा कहे गये ऐसे। बहिरात्मा कि जो कोई शरीर, देह की क्रिया या अन्तर में पुण्य का शुभभाव, वह मेरे हैं - ऐसा मानता है, वह मूढ़ है। आगे 'तत्त्वमूढ़' कहेंगे। वह तत्त्व से अजान मूढ़ जीव है। उसे सम्यग्दृष्टि जीव शुभराग में - व्यवहार समकित में उसे बहिरात्मारूप से मानते है। समझ में आया ?

जो जीव, परद्रव्य से भिन्न आत्मा की रुचि (करके), ऐसे सम्यग्दर्शन का भान है; पुण्य-पाप का शुभ-अशुभभाव उत्पन्न होता है, वह भी बन्ध का कारण है; वह आत्मा नहीं है। शरीर पर; जड़ की क्रिया पर है - ऐसा शरीर से भिन्न और परद्रव्य से भिन्न आत्मा का जिसे दर्शन हुआ है - ऐसा सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा है। उसके भेद लेंगे। - जघन्य, मध्यम (और) उत्कृष्ट (-ऐसे भेद लेंगे)। यह जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अन्तरात्मा चौथे से बारहवे गुणस्थान तक (है, उन्हें) यह राग और पुण्य से भिन्न आत्मा की अनुभवदृष्टि है। ऐसा अन्तरात्मा को अन्तरात्मा रूप से व्यवहार समकिती मानता है। समझ में आया ? यह मानना शुभभाव है।

आत्मा का अन्तर अनुभव, प्रतीति (हुई), वह निश्चयभाव - शुद्धभाव है। ऐसे शुद्धभाव की भूमिका में ऐसे अन्तरात्मा को अन्तरात्मारूप से ठीक से मानना। वह आत्मा से (भिन्न) परवस्तु है न ? उसे अन्तरात्मा, बराबर अन्तरात्मा है, रागरहित आत्मा को जाननेवाला-माननेवाला है, मानना ऐसे अन्तरात्मा को अन्तरात्मारूप से मानना वह व्यवहार समकिती का लक्षण है। समझ में आया ?

परमात्मा - अरिहन्तदेव सर्वज्ञदेव शरीरसहित त्रिकाल ज्ञान (सहित विराजते हैं)। शरीरसहित त्रिकाल ज्ञान; और सिद्ध भगवान शरीररहित त्रिकाल ज्ञान। सिद्ध भगवान ! ऐसे परमात्मा को त्रिकाल ज्ञान होता है और त्रिकाल ज्ञानी - तीन काल - तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय को बराबर जानते हैं। इस प्रकार परमात्मा के ज्ञान को - परमात्मा को जो यथार्थत:

मानता है, उसे व्यवहार समकित का शुभभाव कहा जाता है। आरे..आ..रे.. ! इसमें समझ में आया या नहीं ?

ऐसे अनन्त केवलज्ञान आदि पर्याय और महासमकित आदि की अनन्त पर्यायें, ऐसी शान्ति की पर्याय - ऐसी पूर्ण पर्याय का पिण्ड ऐसा यह आत्मा है। ऐसा आत्मा अत्यन्त ध्रुव शुद्ध अखण्ड ज्ञायक; जिसमें ऐसे अनन्त परमात्मा पड़े हैं, जिसमें ऐसी अनन्त चारित्र की पर्यायें पड़ी हैं। इस आत्मा की राग से भिन्न करके अनुभव, प्रतीति (हो), उसे निश्चय समकिती कहा और ऐसे परमात्मा जो एक समय में तीन काल - तीन लोक को जाने, केवलीप्रभु - ऐसे केवलज्ञान द्वारा तीन काल की पर्याय जैसी (होती है, वैसी जानते हैं), इस प्रकार जो केवली को माने, उसे निश्चयसम्यग्दर्शन होवे तो ऐसे केवली को माननेवाले को व्यवहार समकिती कहा जाता है। ऐ..ई.. ! घानी के बैल की तरह घूमकर फिरे। (यह भाई) कल आये न ? ऐसा कहे, फिर-फिरकर वापस जगह तो वह की वह निकली। आहा..हा.. ! देखो न ! यह एक व्याख्या इन्होंने कितनी (अच्छी) की है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा को क्यों निश्चय समकित कहा ? कि इसमें तो ऐसे अनन्त परमात्मा, अनन्त-अनन्त अन्तरात्मा और अनन्त यथाख्यातचारित्र की पर्यायें और अनन्त क्षायिकसमकित की पर्यायें - ऐसी अनन्त-अनन्त आत्मा में पड़ी है - ऐसा पूरा एक आत्मा है। समझ में आया ? ऐसा एकरूप आत्मा, पूरा तत्त्व भगवान निर्विकल्प आनन्दस्वरूप के अन्तर में स्वभावसन्मुख की प्रतीति में तो बहुत आ गया। ऐसा शुद्ध आत्मा, उसकी श्रद्धा - सम्यग्दर्शन, स्वभावसन्मुख होकर (होता है), वह निश्चय, वह सच्चा है। उसके साथ ऐसे परमात्मा, अन्तरात्मा, बहिरात्मा को जैसे है, वैसे मानना-इसका नाम व्यवहार समकित का शुभ उपयोग, राग कहा जाता है। आहा..हा.. ! समझ में आया या नहीं ?

अजीवतत्त्व, वह आगे लेंगे। भगवान ने आत्मा के अतिरिक्त पाँच द्रव्य अजीव देखे हैं। यह आत्मा जीव है। इसके अतिरिक्त एक धर्मास्तिकाय है, एक अधर्मास्तिकाय है, एक आकाश है, एक काल है और पुद्गल परमाणु है - ऐसे पाँच अजीव की अजीवरूप से श्रद्धा करना। भाई ! इसमें तो ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है; नहीं समझ में आये ऐसा नहीं है,

परन्तु व्यापार में से थोड़ी रुचि हटे तो यह समझ में आये ऐसा है। वे कल कहते थे, बहुत ध्यान रखना (पड़ता है), पकड़ में नहीं आता। उसे रुचि है, प्रेम से सुनता है। यह तो इसका परिचय किया तब। संसार की कैसी अच्छी रुचि लग गयी है।

देखो ! '**अजीव...**' यह व्याख्या तो बहुत (सरल है)। अजीव अर्थात् परमाणु, अनन्त पुद्गल हैं – शरीर, कर्म आदि – ये सब जो अनन्त पुद्गल हैं, उनके द्रव्य, गुण और पर्याय स्वतन्त्र इस प्रकार है, उसी प्रकार अजीव को माने। जैसा भगवान ने देखा – ऐसे अजीव को (ऐसे माने)। समझ में आया ? धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल – ये चार अरूपी द्रव्य) हैं। यह शरीर, वाणी सब पुद्गल है। इसे अजीव को... अजीव का द्रव्य अर्थात् वस्तु, इसके गुण अर्थात् शक्ति और पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था – यह सब अजीव है। उसके कारण उसका उसमें है। ऐसे अजीव को अजीवरूप से; परमाणु से लेकर स्कंध तक; कर्म से लेकर शरीर के बन्धन तक, क्रिया तक जो अजीवतत्त्व है, उसे उसरूप से अजीव माने तब निश्चयसम्यग्दर्शन सहित अजीवतत्त्व की श्रद्धा को व्यवहार समकित कहा जाता है। भाई ! आहा..हा..! अब यह अजीव कौन और अजीव की पर्याय क्या ? सर्वज्ञ क्या और सर्वज्ञ की पर्याय क्या ? यह सब तो व्यवहार समकित के विषय में आ जाता है। समझ में आया कुछ ?

मुमुक्षु :– ...

उत्तर :– जाना नहीं। उसे व्यवहार भी नहीं। स्व पूरा तत्त्व ज्ञानमूर्ति और शुद्ध चैतन्यप्रभु आत्मा है। उसकी अन्तरसन्मुख की प्रतीति के भान बिना... परसन्मुख के विषय का व्यवहार उसे यथार्थ हो नहीं सकता। क्या कहा समझे इसमें ? स्वविषय आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा – ऐसे स्व आत्मा का अन्तर विषय, उसे ध्येय बनाकर अन्दर अनुभव होकर प्रतीति करने का नाम निश्चय स्वविषय की प्रतीति हुई, तब उसे अभी परविषय की प्रतीति (होती है)। पाँच द्रव्यों की (प्रतीति) करना अथवा जीव के अन्तरात्मा, परमात्मा कि जो दूसरे जीव हैं, उनकी उस प्रकार से प्रतीति करना, तब बाह्य विषयवाली व्यवहार समकित – श्रद्धा होती है। कहो, इसमें समझ में आता है या नहीं ? अजीवतत्त्व, यह सब वर्णन आगे करेंगे, हाँ ! उसमें ऐसा आ जाता है।

'**आस्रव...**' तत्त्व। देखो है न ! यह शुभाशुभ परिणाम हैं, शुभ-अशुभभाव हैं - दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह शुभ है; हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वह पाप है - ये दोनों आस्रव अर्थात् मलिनभाव है। ये नये कर्म का कारण है। ऐसे आस्रव को आस्रवरूप मानना। यह सब भेद है न ? उसे व्यवहारश्रद्धा का विषय कहा जाता है। समझ में आया ? यह नौ चीज भेद से है या नहीं ? एकरूप अखण्ड ज्ञायकमूर्ति, अन्तर स्वविषय की श्रद्धा (होना), उसे निश्चय समकित (कहते हैं), उसे ऐसा व्यवहार होता है। समझ में आया ? (यह) आस्रव (हुआ)।

'**बन्धा...**' यह बन्धन... बन्धन। कर्म का बन्धन है न ? दोनों एकरूप हैं। शुभ-अशुभ कोई भेद नहीं है; (दोनों) बन्ध है। बन्ध को बन्धरूप से भलीभाँति जानना चाहिए। शुभ, वह ठीक; अशुभ, (वह अठीक) - यह नहीं। बन्ध को बन्धरूप से जानना। यह निश्चयसम्यग्दर्शन सहित का नव तत्त्व के विषयवाला बन्धका भाव, इसे व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय कहा जाता है। समझ में आया ?

'**संवर...**' आत्मा में इस पुण्य-पाप के राग से रुककर शुद्ध आत्मा में सम्यग्दर्शन सहित शुद्धता की पर्याय का प्रकट होना, उसे संवर कहते हैं। इस संवर तत्त्व के भेद को ठीक से मानना, जानना-इसका नाम अभी व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय कहा जाता है। समझ में आया ? इसका भी पता चले और उसका भी पता न चले और चलो करो धर्म ! भाई ! संवर किसे कहना ? सामायिक और प्रौषध किये... परन्तु किसका सामायिक, प्रौषध भी ? अभी सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ? - इसका भी पता नहीं होता तो सामायिक और प्रौषध आये कहाँ से ? समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि सच्ची सामायिक और प्रौषध करनेवाले जीवों को इस प्रकार मानना, उसे व्यवहार समकित का विषय है। आहा..हा..! और मिथ्या माननेवाले को बहिरात्मारूप से मानना, वह भी व्यवहार समकित का विषय है। भाई ! फिर वापस विषय क्या होगा ? इस व्यवहार समकित का यह लक्ष्य है। उसका लक्ष्य बाहर होता है और निश्चय समकित का लक्ष्य अन्दर है, अन्दर। यह बाहर (लक्ष्य है), दोनों (में) भेद है। अन्तर्मुख की

दृष्टि और बहिर्मुख की दृष्टि, यह व्यवहार होता है। समझ में आया ?

यह तो अभी वीतरागमार्ग की पहली भूमिका की बात चलती है। जैन परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन परमेश्वरने एक समय में तीन काल - तीन लोक देखे हैं; उनके द्वारा कथित नव तत्त्व (है)। समझ में आया ? और उन्हों ने जाना हुआ, देखा हुआ यह आत्मा। यह आत्मा, हाँ ! ऐसा उसे अन्तर प्रतीति में, श्रद्धा-ज्ञान में आवे, तब उसे सच्चा सम्यग्दर्शन (कहलाता है) और उसकी पर्याय में - शुभ विकल्प में नव तत्त्व अर्थात् संवर के साधनेवाले जीव संवररूप से कैसे होते हैं ? उसे संवर ऐसा मानना। समझ में आया ? और अपने में भी संवर की पर्याय के भेद-शुद्धता के अंश कैसे होते हैं ? - उन्हें उस प्रकार से मानना, वह व्यवहार समकित का भेद है। आहा..हा..!

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- पर्याय है न ? भेद है या नहीं ? अभेद तो अन्तर एकरूप हो गया। कहो, समझ में आया ?

संवर जानना। है न ? देखो ! उसे ठीक से जानना, कहते हैं। तब उसे व्यवहार समकित कहते हैं, निश्चय समकित होवे तो। निश्चय समकित दर्शन के बिना अकेला व्यवहार होवे तो उसे व्यवहार नहीं कहते। (वह तो) एक के बिना की शून्य है।

'**निर्जरा**...' आत्मा में शुद्धि की वृद्धि होना। शुभ-अशुभपरिणामरहित शुद्ध चैतन्यमूर्ति के भान में निर्जरा-शुद्धि की वृद्धि होना, (वह निर्जरातत्त्व है)। ऐसे दूसरे जीवों की वृद्धि और अपनी (वृद्धि होना)। ऐसे निर्जरातत्त्व को इस प्रकार भेद से भलीभाँति जानना, मानना - इसका नाम समकित-व्यवहार समकि कहा जाता है, जो पुण्यबन्ध का कारण है। अपने स्वभाव की अभेद से अन्तर श्रद्धा हुई, वह संवर-निर्जरा का स्वरूप है, परन्तु उसके भेद कर, संवर-निर्जरा को भेद से श्रद्धा करना, अभेद को छोड़कर भेद से श्रद्धा करना, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय कहते हैं। समझ में आया ?

'**मोक्ष**...' मोक्ष। भगवान अरिहन्त को सदेह मुक्ति हुई। (वे) देह सहित, चार कर्मों का नाश होकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं। वे भगवान अभी अरिहन्तपद में विराजमान हैं।

सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में है और देहरहित भगवान मोक्ष पधारे, वे सिद्ध हैं। यह चौबीस तीर्थंकर आदि देहरहित हो गये हैं, वे सिद्ध में हैं, अशरीरी हैं। इन्हें शरीर हैं। ऐसे भगवान को केवलज्ञानसहित, केवलज्ञानसहित और तीनकाल-तीनलोक के ज्ञान (सहित) सर्वथा मुक्त हैं, चार कर्मों से (रहित) हैं। ऐसे मोक्ष को मोक्षरूप से श्रद्धा करना, उसे निश्चयसम्यग्दर्शन सहित का व्यवहार समकित का विषय व्यवहार समकित कहते हैं। समझ में आया ? है या नहीं पुस्तक ? मेहमानों को दी है या नहीं ? रखो तो सही। यह लड्डूओं से यह कोई दूसरी चीज़ है। यह भगवान क्या कहते हैं ? घर में तो कभी फुरसत भी नहीं होती। समझ में आया ?

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। तीर्थंकर केवली के मुख में (से) यह बात आयी है। यह बात सन्तों ने पकड़कर, जानकर अनुभव की है। वह यहाँ कही जाती है। समझ में आया ? आहा..हा..! '**कहे तिनको...**' देखो ! अन्तिम शब्द आया न ! ऐसे सात (तत्त्वों को) अर्थात् आस्रव में पुण्य-पाप आ गये। आस्रव है न - दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा - यह शुभपरिणामरूपी पुण्यास्रव है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय भोग, वासना, कमाना, क्रोध, मान, माया - यह पाप आस्रव है। आस्रव में ये दो भाग आ गये। उसमें पुण्य को पुण्यरुप से और पाप को पापरूप से जो '**कहे जिन...**' वीतराग ने कहे; जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहे... '**तिनको ज्यों का त्यों सरधानो।**' है न ? '**उन सबको (ज्यों का त्यों) जैसे कहे हैं वैसे...**' जैसे कहे हैं वैसे। वजन यहाँ है।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने (कही), यह बात अन्यमत में नहीं हो सकती। केवलज्ञानी परमेश्वर तीर्थंकरदेव के ज्ञान में तीन काल - तीन लोक ज्ञात हुए। उसमें उन्होंने जो नव तत्त्व देखे, उस प्रकार जो माने। '**(ज्यों का त्यों)**' ज्यों का त्यों अर्थात् जैसे है वैसे। ज्यों का अर्था जैसा है, त्यों अर्थात् वैसा। '**यथार्थ श्रद्धा करो।**' समझ में आया ? भाई ! यह सब मुम्बई के यहाँ तीन बड़े हैं। हमारे बड़े पण्डित और तुम दो छोटे पण्डित। अभी है न ? कहो, इसमें समझ में आया ? आहा..हा..!

'**इस प्रकार श्रद्धा करना, वह व्यवहार से सम्यग्दर्शन है।**' है अन्दर ! व्यवहार से

अर्थात् पराश्रित श्रद्धा का नाम व्यवहार कहा जाता है। ऐसे नव तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा, वह पराश्रित श्रद्धा है; इसलिए उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन, शुभपरिणाम, शुभविकल्प कहा जाता है। समझ में आया ? कहो भाई ! हाथ में (पुस्तक) रखी है या नहीं ? फिर उसका अर्थ समझना।

मुमुक्षु :- अगमनिगम की बातें है।

उत्तर :- लो, अगनिगम की, ठीक ! यह भी तक बड़ी बेगार खोटी बेगार है न ? यह दूसरी चीज़ है - ऐसा कहते हैं। आत्मा मजदूरी करके ऐसा का ऐसा हेरान हो गया है।

कहते हैं - **'है सोई समकित व्यवहारी...'** है न ? **'अब (इनरूप) इन सात तत्त्वों का...'** (सामान्य-विशेष) संक्षेप से (कहता हूँ)। समझ में आया ? सामान्य-विशेष अर्थात् कोई संक्षेप में और कोई थोड़े विस्तार से... **'विस्तार से सुनकर...'** सुनकर। ऐसा कहते हैं, सुनो। **'सुनकर मन में चित्त में अटल (प्रतीत) श्रद्धा करनी चाहिए।'** अटल श्रद्धा करनी चाहिए। व्यवहार श्रद्धा भी ऐसी अटल, हाँ ! चलित न हो ऐसी; अर्थात् (बारबार) बदलनेवाली नहीं ऐसी। टले तो फिर वापस चली जाए।

मुमुक्षु :- यह सुने बिना ?

उत्तर :- उसे कहाँ होश है ? होश होने के काल में इसे सुनना होता है, ऐसा कहते हैं। सुनकर होता है - इसका अर्थ उसे समझे, तब उसे सुनना होता है - ऐसा है, भाई !

वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमेश्वरने... वैसे तो सवेरे-शाम बोले - केवलिपण्णत्तो धम्मो शरणं - बोलते हैं न मांगलिक में ? पहाड़े बोले पहाड़े। अर्थ का कुछ पता नहीं होता। अरिहंता मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं। किसे कहना केवली ? और किसे कहना पण्णत्तो ? और किसे कहना धर्म ? तीनों का अर्थ ही (अलग है)। परन्तु फुरसत नहीं मिलती न ! पाप के कारण पूरी जिन्दगी मजदूरी कर-करके मर गया ऐसा का ऐसा। धर्म की पहिचान में भी धर्म के नाम पर मजदूरी की है। यह भाई कहते हैं न ? ये डोकरा तो वृद्ध हो गया। ८४ वर्ष (हुए हैं)। सेठिया घानी के (पशु की) तरह अभी तक ऐसा का ऐसा गया। आँख से पट्टी खोली तो वह की वह घानी और वह की वह तेली।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- आज सवेरे इसने पहले यही कहा कि हम तो उसी की उसी जगह पर हैं, हम कोई आगे नहीं चले हैं। कहो, समझ में आया ? लो, वहाँ संघ के सेठ हैं, 'वडाल' के 'वडाल' न ? कर-करके इतना किया। यह किया और वह किया ! सामायिक की और प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किया ! किसकी सामायिक ? किसके प्रौषध ? किसका प्रतिक्रमण ? अभी तो सामायिक, प्रौषध किसे कहना ? - इसका तो पता नहीं है। आत्मा क्या है ? किसमें स्थिर होना चाहिए ? किसमें लीन होना चाहिए ? वह चीज़ क्या है ? उस चीज़ के भान बिना स्थिरता... ऐसी सामायिक आयी कहाँ से ?

मुमुक्षु :- होती है न ?

उत्तर :- हो, परन्तु गुड़ होना चाहिए न ? गुड़ होवे तो ? गुड़ के नाम पर गोबर खाये तो क्या होगा ? ऐसे भगवान आत्मा, जो निर्विकल्प श्रद्धा में यह आत्मा पूर्णानन्द ऐसे प्रतीति में आये बिना इसमें स्थिरता.. इसमें स्थिरता से मुझे शान्ति मिले और इसमें स्थिरता से मुझे मुक्ति मिले... उस चीज़ की प्रतीति, पहिचान बिना यह स्थिर किसमें होगा ? यह तो अनादि से पुण्य और विकल्प में स्थिर है। ऐसे के ऐसे विकल्प उठाकर उसमें (स्थिर है)। वह तो संसार है, आस्रव है, बन्ध है। समझ में आया ?

'**दृढ़ प्रतीत उर आनो...**' उसकी व्यवहार से यथार्थ श्रद्धा करना। अब इसका अर्थ करते हैं, देखो ! हमारे ऊपर आ गया है। '**भावार्थ :- निश्चयसम्यग्दर्शन के साथ व्यवहार सम्यग्दर्शन कैसा होता है, उसका यहाँ वर्णन है।**' निश्चय अर्थात् आत्मा शुद्ध पवित्र की अन्तर सम्यक्दृष्टि प्रकट हुई हो, उसके साथ व्यवहार का विकल्प-शुभराग-व्यवहार समकित कैसा होता है - उसका इसमें वर्णन है।

'**जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन न हो...**' भगवान आत्मा पवित्र, पुण्य-पाप के रागरहित अखण्डानन्द ज्ञानानन्दस्वरूप की अन्तर पहिचान, अनुभव और प्रतति नहीं है, '**उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन भी नहीं हो सकता।**' 'भी' अर्थात् निश्चय तो नहीं परन्तु व्यवहार भी नहीं। निश्चय (सम्यक्दर्शन) के बिना, आत्मा के अन्तरभान के बिना, यह व्यवहार का परविषय का

विकल्प उपचार से भी उसे लागु नहीं पड़ता। समझ में आया ?

'**निश्चय श्रद्धा सहित...**' देखो ! आत्मा एक वीतराग निर्विकल्प पिण्ड प्रभु आत्मा है - ऐसी अन्तरदृष्टि होने पर '**सात तत्त्वों की विकल्प-राग सहित की श्रद्धा...**' यह नौ कहो या सात कहो। आस्रव के दो भेद। उसकी विकल्प अर्थात् भेदवाली श्रद्धा, भेद की श्रद्धा को '**व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है।**' कहो, समझ में आया ? व्यवहार सम्यग्दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं परन्तु वह शुभ विकल्प और उस प्रकार का व्यवहार का ज्ञान है, इसलिए व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं। व्यवहार सम्यग्दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं। निश्चय अर्थात् यथार्थ सम्यग्दर्शन। व्यवहार सम्यग्दर्शन, (वह) सम्यग्दर्शन नहीं परन्तु उसे उस प्रकार की श्रद्धा में, व्यवहार श्रद्धा के क्षयोपशम के भाव में और विकल्प में ऐसी श्रद्धा होती है, इसलिए उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन का आरोप दिया जाता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- व्यवहार सम्यग्दर्शन श्रद्धागुण की पर्याय नहीं है ?

उत्तर :- श्रद्धागुण की पर्याय नहीं है। नहीं, वह तो राग है। यह क्या कहा ? '**विकल्प-राग सहित की श्रद्धा...**' यह श्रद्धागुण की पर्याय नहीं है। निश्चयसम्यग्दर्शन, वह आत्मा के श्रद्धागुण की निर्मल पर्याय है। व्यवहार समकित तो राग है, वह कहाँ श्रद्धागुण की पर्याय ? श्रद्धागुण की पर्याय क्या ? यह सब कभी सुना नहीं होगा और गाँववालों को तो (ऐसा लगता है) क्या कहते हैं यह ? गाँववाले क्या और शहर(वाले भी क्या) ? तत्त्व के भान बिना ऐसे के ऐसे मजदूरी करते रहते हैं। एक तो पूरे दिन संसार की मजदूरी करते हैं।

मुमुक्षु :- वहाँ तो लाभ होता है।

उत्तर :- किसका ? धूल का ? क्या लाभ होता है ? पैसे तो उसके घर में रह गए। पैसे कहाँ उसके पास घुस गए है ? उसके पास लाभ ममता का होता है, भाई ! पाँच-दस लाख, बीस लाख पैसे तो उसके पास - जड़ में रह गए। उसका क्या लाभ ? मेरे पास (पैसे) आए, ऐसी ममता उसके पास आई। उसे क्या लाभ हुआ ?

मुमुक्षु :- हमारी कोई बात तो रखिए (मानिए) ?

उत्तर :- एक भी बात सत्य नहीं है। सच्ची किसकी रखें ? एक भी बात सत्य होवे तो सच्ची रखें न ? कैसे होगी ? कहो, समझ में आया ? पैसा.. पैसा.. क्या पैसा ? दो करोड़, तीन करोड़ और धूल करोड़। इसके पास क्या आया होगा ? ऐ..ई..! तुम्हारे भतीजे के पास क्या आया होगा ? यह तो कहता है - आकुलता आयी। लो ! (अपने यहाँ एक मुमुक्षु आते है न) ? बाईस-बाईस मंजिल के हजीरा बनाते हैं न ? हजीरा अर्थात् ? मकान... मकान। बाईस... बाईस मंजिर के। धूल में भी नहीं वहाँ अब। उनकी अपेक्षा तो अपने इनके मामा का लड़का बड़ा। चालीस करोड़ !'गोवा.. गोवा !''पाणसणा' का न ? क्या कहलाता है ? 'पाणेसणा' पांदड़ा नहीं। पांदड़ा तो यहाँ एक गाँव है। हमारे 'उमराला' से 'गारियाधार' जाते तब रास्ते में पांदड़ा आता था। वह आता है, पता है। यह तो छोटी उम्र में गये थे न ! दस वर्ष - बारह वर्ष की उम्र में 'उमराला' से शाम से सवेरे जाते थे। 'पाणेसणा' इसके मामा का लड़का, सगे मामा का लड़का।

मुमुक्षु :- इतना तो पुण्य है न ?

उत्तर :- आकुलता का ढ़ेर है। धूल में भी वहाँ पैसे काम नहीं करते। रूपया है, वह अजीवतत्त्व है। वह मेरे, यह माना, वह मिथ्यात्व तत्त्व है और उसकी आकुलता, वह आस्रवतत्त्व है। आहा..हा..! कहो, क्या कहना है ? पैसा अजीवतत्त्व है या जीव ? यह अजीवतत्त्व भिन्न है। जीव माने कि मेरा है। वह इसका नहीं है और 'मेरा' माने तो वह मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु :- अजीव भी जीव को उपयोगी है न ?

उत्तर :- धूल में भी उपयोगी (नहीं है)। क्या काम आता है ? जीव उसका काम कर सकता है ? वह आत्मा को काम आता है ? राग करने में निमित्त होता है। राग अर्थात् आकुलता करने में निमित्त हुआ। वह तो आकुलता-दुःख में निमत्ति हुआ। आहा..हा..! भगवान का गज अलग प्रकार का है, भाई ! तीर्थंकर-केवलियों का माप - गज अज्ञानी की अपेक्षा अलग प्रकार के हैं। यह दुनिया के साथ मेल नहीं खाता। यह पैसा मेरा है - ऐसी मान्यता (मिथ्यात्व है)। यह पैसा आत्मा का है ? जीव का अजीव कभी होता है ? जीव का

कभी अजीव होता है ? अर्थात् अजीव इसका होगा ? ऐसा। यह अजीव मेरा है – ऐसा माना, वह तो मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है। परवस्तु को मेरी माने... यहाँ कहा न ? परद्रव्य से भिन्न अपनी श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दृष्टि जीव एक रजकण को भी अपना नहीं मानता। भले राजपाट में दिखे। मेरा मेरे पास। अनन्त गुण की शुद्धता भरी है, वह मेरी चीज है। पुण्य-पाप के भाव उठें, वह मेरी चीज़ नहीं है; तो फिर यह धूल मेरी कहाँ से आयी ? समझ में आया ? '**परद्रव्यनतैं भिन्न...**' पहले आ गया न ? इन सात तत्त्वों में भी आ गया। आस्रवतत्त्व नहीं आया ? अजीवतत्त्व, उसके रजकण, स्कंध (है)। यह व्यवहार श्रद्धा हुई। इससे रहित अकेले आत्मा की श्रद्धा की, तब ऐसी श्रद्धा को व्यवहार कहते हैं। आहा..हा..! बहुत अच्छी बतायी है ! गागर में सागर भर दिया है।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- नहीं, नहीं; यह पहले का है। यह तो कोई शब्द का फेर है। इसमें है, देखो ! यह पुराना है, पुराना। पुराना है, इसमें है। कहाँ गया पुराना ? लो ! यह... यह रहा। यह पुराना। देखो, इसमें ही यह है। समझ में आया ? यह तो इससे हमनें सुधारा हैं। देखो ! यहाँ लिखा है। जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष सात तत्त्व कैसे है, उसका जैसा हैं, वैसा अटल श्रद्धान करना, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है। अब फिर इन सात तत्त्वों के स्वरूप का सामान्य और विशेषरूप से वर्णन करेंगे। 'रूप' है न अन्दर में ? '**अब इन रूप बखानो।**' ऐसा। इस पर वजन है। यहाँ देखो न, तीसरे में ! '**अब इन रूप बखानो-**' इनका – सात का स्वरूप अब कहेंगे – ऐसा। सात तत्त्व भिन्न-भिन्न कैसे हैं – उन्हें यथार्थ श्रद्धा करे। आत्मदर्शनसहित होवे तो उसे व्यवहार समकित कहा जाता है। उसके स्वरूप को अब कहेंगे – यह शब्द पाठ में ही है। समझ में आया ?

इसमें भी सात तत्त्वों का चित्र लिया है, हाँ ! देखो ! यह चित्र है, देखो ! ऐसे अन्दर भलीभाँति श्रद्धा करता है। ऐसे आँख रखकर देखता नहीं हो ! चित्र में सात तत्त्व जैसे हैं, वैसे बाह्य ज्ञान से, बहिर्लक्ष्यी ज्ञान से उन्हें भलीभाँति देखता है कि ऐसे हैं।

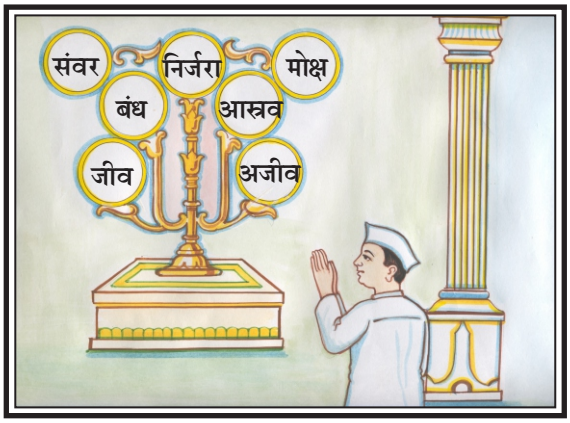

अपने यहाँ से यह अधिक डाला है। '(२) तत्त्वार्थसूत्र में '**तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्**'' कहा है... 'कुन्दकुन्दाचार्य' के शिष्य 'उमास्वामी'ने एक तत्त्वार्थसूत्र बनाया है। परम्परा भगवान से आये हुए तत्त्वों को थोड़े शब्दो में समेटकर संक्षिप्त बनाया है। उसमें यह '**तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्**' कहा है। '**वह निश्चयसम्यग्दर्शन है। यहाँ जो सात तत्त्वों की श्रद्धा कही है...**' वह व्यवहार है, क्योंकि भेदरूप है और तत्त्वार्थसूत्र में जो तत्त्वार्थ श्रद्धान कहा है, वह निश्चय है। वरना समानता तो दोनों में है – यह भी तत्त्वार्थ है और वह भी तत्त्वार्थ है। समझ में आया ?

यह सात तत्त्वों की श्रद्धा, वह व्यवहार है और 'उमास्वामी'ने तत्त्वार्थश्रद्धान कहा, वह आत्मा के ज्ञान-भान सहित की आस्रव, बन्ध, संवर का उसमें अभाव है – ऐसी श्रद्धासहित, उसमें अभेद एक आत्मा की श्रद्धा की – यह सब एकवचन में समाहित हो जाता है। समझ में आया ? वह निश्चयसम्यग्दर्शन है और इन सात को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं। इसलिए यहाँ ज़रा स्पष्टीकरण किया है।

'**देखो मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ - ४७७...**' यह हिन्दी की बात है। '**पुरुषार्थसिद्धयुपाय, गाथा २२।**' तत्त्वार्थ श्रद्धान निजरूप है। यह समझ में आया ? है इसमें ? इसमें है यह – '**जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्तव्यम्।**' यह पुरुषार्थसिद्धयुपाय की २२वीं (गाथा है)। '**श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मारूपं तत्-**' (अर्थात्) विपरीत अभिनिवेश से रहित – विपरीत – मिथ्या अभिप्राय से रहित। '**जीव-अजीवादि तत्त्वार्थों का...**' पुरुषार्थसिद्धियुपाय की २२ वीं गाथा है, वह बोली जाती है। (वह श्रद्धान) सदाकाल करने योग्य है। '**वह श्रद्धान ही आत्मा का स्वरूप है।**' समझ में आया ?

'**आत्मरूपं...**' क्योंकि दर्शनमोहरूप उपाधि दूर होने पर प्रकट होता है, इसलिए आत्मा का स्वभाव है। चतुर्थ आदि गुणस्थानों में प्रकट होता है। चौथे गुणस्थान से आत्मा की अनुभव-दृष्टि प्रकट होती है; तत्पश्चात् सिद्ध अवस्था में भी सदाकाल उसका सद्भाव रहता है; इसलिए कहा है कि '**सदैव कर्तव्यम्...**' सिद्ध में भी (रहता है)। यह पुरुषार्थसिद्धियुपाय की २२वीं गाथा और मोक्षमार्गप्रकाशक हिन्दी (दिल्ली संस्करण) में ४७७ पृष्ठ पर है। क्या कहा यह ?

यह आत्मा का सम्यग्दर्शन-निश्चय श्रद्धा - तत्त्वार्थश्रद्धान शास्त्र में कहा है, यह तत्त्वार्थ श्रद्धाननिश्चय है। आत्मा की - अभेद की श्रद्धासहित; और यह जो सात तत्त्वों की श्रद्धा (कही है), यह व्यवहार श्रद्धा का विकल्प राग हैं, उसे यहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान कहा जाता है। '**यहाँ जो सात तत्त्वों की श्रद्धा कही है, वह भेदरूप है...**' पहले (जो) तत्त्वार्थ (श्रद्धान कहा), वह अभेद एकवचनरूप था। यह '**भेदरूप है - रागसहित है; इस कारण वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है।**' व्यवहार अर्थात् शुभरागरूप है। जो श्रद्धा की पर्याय नहीं है, फिर भी उसे सम्यग्दर्शन की पर्याय कहने का नाम व्यवहार कहा जाता है। पर्याय क्या और यह सब भाषा कैसी ?

जैनदर्शन की तो पहली ईकाई है। द्रव्य किसे कहना ? कि त्रिकाली वस्तु को द्रव्य कहते हैं। उसमें शक्ति और गुण हौ, उसे गुण कहते हैं। उसकी वर्तमान हालत को - स्थिति को पर्याय कहते हैं। ऐसे छह द्रव्य भगवान ने देखे हैं। (उस) प्रत्येक में द्रव्य-गुण-पर्याय होते हैं। उसे उसके द्रव्य-गुण-पर्याय से उसका जैसा तत्त्व है, उस प्रकार श्रद्धा करना, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय कहा जाता है। समझ में आया ?

'**निश्चयसम्यग्दर्शन में कैसा निमित्त होता है...**' निश्चयसम्यग्दर्शन में या निश्चयमोक्षमार्ग में... समझे ? निश्चयसम्यग्दर्शन के समय व्यवहार सम्यग्दर्शन कैसा होता है अथवा निश्चयमोक्षमार्ग-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन की एकता में व्यवहारमोक्षमार्ग का सम्यग्दर्शन कैसा होता है ? समझ में आया ? '**तीसरी गाथा कही है...**' उसके लिए ये तीसरी गाथा सम्यग्दर्शनकी है। '**उसका ऐसा अर्थ नहीं है कि निश्चयसमकित के बिना व्यवहारसमकित हो सकता है।**' यह सात की श्रद्धा हो, इसलिए व्यवहार-समकित है और

निश्चय है नहीं – ऐसा नहीं हो सकता है। एक हो तो शून्य को दस गिना जाता है; एक के बिना शून्य को शून्य नहीं गिना जाता (अर्थात्) गिनती में नहीं आता। इसी प्रकार आत्मा के अन्तर अनुभव में समकित निश्चय होवे तो एक (का अंक) हुआ तो व्यवहार समकित के तत्त्वार्थ श्रद्धान को निमित्तरूप से व्यवहार कहा जाता है। वह है तो शून्य, हाँ ! सम्यग्दर्शन नहीं।

जीव के भेद, बहिरात्मा और उत्तम अन्तरात्मा का लक्षण

बहिरातम, अन्तरआतम परमातम, जीव त्रिधा हैं;
देह जीव को एक गिने बहिरातम तत्त्वमुधा है।
उत्तर मध्यम जघन त्रिविध के अन्तर-आतम ज्ञानी;
द्विविध संगबिन शुध-उपयोगी मुनि उत्तम निजध्यानी।।४।।

अन्वयार्थ :- (बहिरातम) बहिरात्मा, (अन्तरआतम) अन्तरात्मा (और) (परमातम) परमात्मा, (इस प्रकार) (जीव) जीव (त्रिधा) तीन प्रकार के (है) है; (उनमें) (देह जीवको) शरीर और आत्मा को (एक गिने) एक मानते हैं, वे (बहिरातम) बहिरात्मा हैं (और वे बहिरात्मा) (तत्त्वमुधा) यथार्थ तत्त्वों से अजान अर्थात् तत्त्वमूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं। (आतमज्ञानी) आत्मा को परवस्तुओं से भिन्न जानकर यथार्थ निश्चय करनेवाले (अन्तरआतम) अन्तरात्मा (कहलाते हैं; वे) (उत्तम) उत्तम (मध्यम) मध्यम और (जघन) जघन्य ऐसे (त्रिविध) तीन प्रकार के हैं; (उनमें) (द्विविध) अन्तरंग तथा बहिरंग ऐसे दो प्रकार के (संगबिन) परिग्रह रहित (शुध उपयोगी) शुद्ध उपयोगी (निजध्यानी) आत्मध्यानी (मुनि) दिगम्बर मुनि (उत्तम) उत्तम अन्तरात्मा है।

भावार्थ :- जीव (आत्मा) तीन प्रकार के हैं - (१) बहिरात्मा, (२) अन्तरात्मा, (३) परमात्मा। उनमें जो शरीर और आत्मा को एक मानते हैं, उन्हें बहिरात्मा कहते हैं; वे तत्त्वमूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं। जो शरीर-आत्मा को अपने भेदविज्ञान से भिन्न-भिन्न मानते हैं, वे अन्तरात्मा

अर्थात् सम्यग्दृष्टि हैं। अन्तरआत्मा के तीन भेद हैं - उत्तम, मध्यम और जघन्य। उनमें अंतरंग तथा बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रह से रहित सातवें से लेकर बारहवें गुणस्थान तक वर्तते हुए शुद्ध-उपयोगी आत्मध्यानी दिगम्बर मुनि उत्तम अन्तरात्मा हैं।

अब, '**जीव के भेद, बहिरात्मा और उत्तम अन्तरात्मा का लक्षण।**' लो, यह इसे व्यवहार सम्यग्दर्शन में श्रद्धान करना चाहिए, पहिचान करके यथार्थत: मानना चाहिए।

बहिरातम, अन्तरआतम परमातम, जीव त्रिधा हैं;
देह जीव को एक गिने बहिरातम तत्त्वमुधा है।
उत्तर मध्यम जघन त्रिविध के अन्तर-आतम ज्ञानी;
द्विविध संगबिन शुध-उपयोगी मुनि उत्तम निजध्यानी।।४।।

क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा, जिसने सम्यग्दर्शन में पूरा आत्मा पूर्णानन्द को पकड़ा – मैं परमस्वरूप से, परमात्मस्वरूप से, मैं परमस्वरूप से पूर्णानन्द हूँ – ऐसा जिसने सम्यक्श्रद्धा – दर्शन में पकड़कर प्रतीति की है, उसे व्यवहार श्रद्धा में जीव के भेद जैसे है, (वैसे श्रद्धा की।) यहाँ वे दूसरे भेद नहीं गिने हैं, भाई ! यहाँ मात्र बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा (ये भेद) गिने हैं। देखो ! मुद्दे की रकम गिनी ! वरना तो जीव के दूसरे भेद भी बहुत हैं – स्थावर और त्रस और अमुक... अमुक, परन्तु यह तो कहते हैं – वे प्रयोजनभूत नहीं हैं। यहाँ प्रयोजनभूत की बात लेनी है, भाई ! यहाँ सात तत्त्वों में प्रयोजनभूत की बात लेनी है। व्यवहार परन्तु उसका प्रयोजनभूत व्यवहार। समझ में आया ? हैं !

मुमुक्षु :– ... काम नहीं ?

उत्तर :– उसका यहाँ काम नहीं।

कहते हैं, अपने आत्मा की – शुद्ध स्वभाव के सन्मुख की अन्तर प्रतीति – निश्चय श्रद्धा हुई, तब उसे जीव के भेदों की ऐसी श्रद्धा का शुभराग होता है। इस प्रकार का ज्ञान का

क्षयोपशम होता है, ऐसा एक परसन्मुख का विकल्प होता है।

'**बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा (इस प्रकार) जीव तीन प्रकार के हैं...**' ऐसा यह माने। अब तीन कैसे होते हैं - यह माने ? '**(देह-जीव को) शरीर और आत्मा को (एक गिने)...**' शरीर की क्रिया हो, वह आत्मा करता है अथवा शरीर है तो आत्मा है, शरीर है तो आत्मा है - इस प्रकार शरीर को ही आत्मा मानता है। यह वाणी है तो आत्मा है - इस प्रकार वाणी को आत्मा मानना है। सब जड़ को (आत्मा मानता है)। कर्म है तो आत्मा है, वह जड़ को आत्मा मानता है। बहिर-जीव-स्वभाव के अतिरिक्त बहिर्भाव-पुण्य-पाप शरीर, कर्म सब बहिर्भाव है। समझ में आया ? यह उसका अन्तरभाव नहीं। जीव का अन्तर्भाव तो ज्ञानानन्द शुद्ध स्वभाव है; बहिर्भाव पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभपरिणाम या हिंसा, झूठ के अशुभ (परिणाम) या कर्म, शरीर अजीव यह सब बहिर्भाव हैं। इस बहिर्भाव को अपना माने, यह मेरा - जीव का है - ऐसा माने, उसे बहिरात्मा - मिथ्यादृष्टि जीव कहा जाता है। अर्थात् क्या कहा ? सम्यग्दृष्टि को, दूसरे जीव, शरीर और कर्म मेरे, पुण्य-पाप के भक्ति भाव मेरे ऐसा माननेवाले हों, उसे व्यवहार समकित के विषय में, वह बहिरात्मा है - ऐसा उसे मानना चाहिए। समझ में आया ? हैं ?

मुमुक्षु :- बहुत स्पष्टता हो गयी।

उत्तर :- बहुत स्पष्टता हो गयी, कहते हैं। उसके लिए तो यह सब किया है। (सब लेने का) कहते थे तो फिर एक बार लेना था, लेते हैं, चलो ! नया-नया कुछ लेना न ! कहो, समझ में आता है या नहीं ? यह पढ़ा था ? पहले पूरा पढ़ा था ? यह (छहढाला) पढ़ी थी या नहीं ? घर में नहीं ? है तो अवश्य, कहते हैं। आहा..हा.. !

मुमुक्षु :- धीरे-धीरे...

उत्तर :- यह धीरे-धीरे तो चलता है, देखो न !

बहिरात्मा = बहिर्-आत्मा - ऐसा शब्द पड़ा है। जीव के तीन प्रकार में - प्रयोजनभूत तत्त्व के प्रकार में एक बहिरात्मा है। आत्मा तो सही, परन्तु वह आत्मा, पुण्य और पाप के परिणाम को, विकार को अपना मानता है, उनसे अपने को लाभ मानता है; देह की क्रिया को,

बाहर के पैसे-धन से अपने को लाभ माने - ऐसे जीव को बहिरात्मा-मिथ्यादृष्टि-तत्त्वमूढ़ा अर्थात् तत्त्व का मूढ़ जीव है, उसे बहिरात्मा जानना चाहिए। सम्यग्दृष्टि को व्यवहार समकित मैं, व्यवहारज्ञान में उसे बहिरात्मा के रूप में मानना चाहिए। कहो, यह कोई कहता है, अपने को पर का क्या काम ? भाई ! यहाँ पर की बात नहीं। ऐ..ई..! दूसरे आत्मा के तीन प्रकार में किसमें है - ऐसी मान्यता व्यवहार समकित के विषय में आती है। भाई ! देखो न ! कैसा बनाया है !

शरीर और आत्मा को एक माननेवाले अर्थात् शरीर, उसकी क्रिया - यह शरीर की क्रिया, यह वाणी की क्रिया - यह आत्मा की है, आत्मा है तो शरीर चलता है, आत्मा है तो वाणी बोली जाती है - ऐसा माननेवाले उस जड़ को ही आत्मा मानते हैं, देह को ही आत्मा मानते हैं। जो बहिर्मुख विकार है, उसे ही आत्मस्वभाव मानते हैं। आत्मभाव, देह को आत्मा माने और पुण्य-पाप को आत्मभाव माने; अर्थात् आत्मा को - आत्मभाव को पर से अपने को मानता है। समझ में आया ? ऐसे जीवों को भगवान ने मिथ्यादृष्टि कहा है। वे जैन में हो या अन्य में हो, बाड़ा (संप्रदाय) के साथ यहाँ सम्बन्ध नहीं है, भाई ! यह कहाँ वाड़ा की बात है ? यह तो भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ का कथन है। इसलिए नहीं कहा ? '**कहे जिन तिनको...**' भगवान ने ऐसा कहा है। ऐसे जीवों को भगवान ने बहिरात्मा कहा है।

जो जीव, शरीर की क्रिया मुझसे होती है, शरीर का आत्मा, शरीर है तो मैं हूँ, शरीर साधन होवे तो धर्म होता है, शरीर निरोग होवे तो धर्म होता है, शरीर रोगवाला होवे तो आत्मा को नुकसान होता है - ऐसा माननेवाले सब शरीर को ही आत्मा माननेवाले हैं, भाई ! शरीर अच्छा हो तो पर की दया पलती है, लो ! धूल भी नहीं, सुन न अब। शरीर तो मिट्टी-जड़ है, वह तो धूल है, अजीव है। वह अजीवतत्त्व है। अजीव के द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों अजीव हैं। द्रव्य अर्थात् रजकण; गुण अर्थात् उसके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श और अवस्था (अर्थात्) यह अवस्था दिखती है, वह तीनों अजीव हैं। इस अजीव की कोई भी शक्ति या पर्याय मेरी है अथवा मुझसे होती है अथवा वह मेरे अस्तित्व में है अथवा उसके अस्तित्व के कारण मैं हूँ (-ऐसा माननेवाले बहिरात्मा हैं।) 'तन उपजत' - एक (छन्द) में आया था न ? भाई ! देह उत्पन्न

हुआ तो मैं उत्पन्न हुआ; देह मर गया तो मैं मर गया – ऐसे देह के – अजीव के तत्त्व को जीव माननेवाला बहिरात्म जीव है, मिथ्यादृष्टि है। ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, व्यवहार समकित में ऐसे बहिरात्मा को बहिरात्म रूप से श्रद्धा करना चाहिए। आहा..हा..!

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- तुमने कब पढ़ा है ? अभी-अभी ही थोड़े निवृत्ति हुए हो। थोड़ा कहा, अभी तो इसे मदद करनी, उसको करानी। (कहते हैं) भाईयों को मदद करनी, पहले करनी, होशियार व्यक्ति हो तो काम में जहाँ-जहाँ लगा देना। 'पोरबंदर' में पहुँच जाए या नहीं ? काका चलो, गौशाला में ! यह गौशाला के अधिपति कहलाते हैं। यह तो गत काल की अपेक्षा से बात है। आहा.हा..!

वह बहिरात्मा कैसा है ? '**(तत्त्वमुधा) यथार्थ तत्त्वों से अजान अर्थात् (तत्त्वमूढ़) मिथ्यादृष्टि है।**' मूढ़ अर्थात् मूर्ख है। वह तत्त्व का मूर्ख है। जीव को जीव नहीं मानता, पुण्य-पाप को पुण्य-पाप का आस्रव नहीं मानता; शरीर को अजीव नहीं मानता – वे सब तत्त्व में मूर्ख हैं। ऐसे तत्त्व में मूर्ख जीवों को बहिरात्मा रूप से समकिती व्यवहार समकित में उन्हें मानता है। कहो, समझ में आया ?

अब, आत्मज्ञानी है न ? अन्तिम शब्द है न ? '**उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के अन्तर आतम ज्ञानी।**' वहाँ से शुरू किया है। आत्मज्ञानी जीव अर्थात् '**आत्मा को परवस्तुओं से भिन्न जानकर यथार्थ निश्चय करनेवाला...**' इसलिए पहले आया था, वहाँ। परद्रव्य से भिन्न आत्मरुचि भली है। आया था न ? आत्मा का ज्ञान है कि शरीर, वाणी मैं नहीं; पुण्य-पाप का राग होता है, वह भी मैं नहीं, वह तो विकार है। आत्मा का ज्ञान – आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसका भान है – ऐसा आत्मज्ञानी। पर से भिन्न जानकर '**निश्चय करनेवाला अन्तरात्मा...**' वह अन्तरात्मा कहलाता है, देखो ! अंतर स्वरूप जैसा अन्दर है, उसे माननेवाला, वह अन्तरात्मा है। पुण्य-पाप विकार, शरीर आदि बहिर् है, उन्हें आत्मा माननेवाला बहिरात्मा है। सम्यग्दृष्टि को ऐसे को बहिरात्मा रूप से जानना; और पुण्य-पाप, देह रहित आत्मा है – ऐसा माननेवाला आत्मज्ञानी है। उस आत्मज्ञानी जीव को व्यवहार श्रद्धा में आत्मज्ञानी रूप से अन्तरात्मारूप

मानना। समझ में आया ? पर के लिये यहाँ बात नहीं है। इसकी-अपनी आत्मा की पहिचान में ऐसी चीज़ व्यवहार में आती है। समझ में आया ? कोई कहे कि हमें पर का क्या काम ? यहाँ पर की बात कहाँ है ? अपनी निश्चय श्रद्धा में, व्यवहार श्रद्धा के भाव में जो आत्मा की स्थिति है, उसको विपरीत न मान ली जाए; है - ऐसी मानना, इसके लिए व्यवहार समकित कहा गया है। अपने लिये है; पर के लिये यहाँ कहाँ बात है ? समझ में आया ?

इस अन्तरात्मा - आत्मज्ञानी के तीन प्रकार हैं। '**उत्तम, मध्यम और जघन्य - ऐसे तीन प्रकार के हैं।**' इन तीन प्रकारों में '**अन्तरंग और बहिरंग इन दो प्रकार के परिग्रह से रहित (शुद्ध उपयोगी) शुद्ध उपयोगी (निजध्यानी) आत्मध्यानी (मुनि) दिगम्बर मुनि, उत्तम अन्तरात्मा है।**' इस प्रकार सम्यग्दृष्टि को व्यवहार समकित में ऐसे मुनि को उत्तम आत्मा-अन्तरात्मा मानना। कैसा ? उन्हें बाह्य और अन्तरंग परिग्रह का त्याग होता हैं। बाहर में एक वस्त्र का धागा नहीं होता; अन्तर (में) तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव होता है - ऐसे संग रहित... अन्तर में राग का संग नहीं, बाहर में परिग्रह का - वस्त्र-पात्र का संग नहीं परिग्रह (नहीं), एक शुद्धोपयोगी, शुद्ध परिणामी, शुद्ध उपयोगवाला। इस शुद्धोपयोग को शुद्ध परिणाम भी कहा है, भाई ! यह दोपहर में कहेंगे। उसमें गाथा आती है न ? उसमें अनन्त शुद्धोपयोग का शुद्ध परिणाम ले लिया है। शुद्ध परिणाम, यह तो शुद्ध परिणाम ही है। समझ में आया ?

शुद्धोपयोगी अर्थात् जिसके परिणाम शुद्ध है। पुण्य-पाप रहित शुद्ध परिणाम और शुद्ध उपयोग है। बाह्य त्याग है; अभ्यन्तर राग का त्याग है। अन्दर आत्मा के व्यापार में वह त्याग कहा। अब यहाँ अस्ति से क्या है ? आत्मा शुद्ध स्वभाव की रमणतावाला जीव है, वह निजध्यानी आत्मा के ध्यान में आत्मा को ध्येय में लेकर ध्यान करता है। विकल्प आदि का नहीं, पर का नहीं - ऐसे आत्मध्यानी मुनि - दिगम्बर मुनि होते हैं। बाह्य में दिगम्बर होते हैं, अभ्यन्तर में तीन कषाय का अभाव होता है। ऐसे आत्मा को उत्तम अन्तरात्मा, सम्यग्दृष्टि जीव को निश्चयसम्यग्दर्शन की भूमिका में व्यवहार समकित के विषय में ऐसे को उत्तम अन्तरात्मा पहिचानकर मानना चाहिए। समझ में आया ? इस व्यवहार सम्यग्दर्शन के विषय में एक अन्तरात्मा कहा। विशेष व्याख्या करेंगे। (श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)